[2008] 8 एस.सी.आर. 1048

लाटू महतो एवं ए.एन.आर.

बनाम

बिहार राज्य (अब झारखंड)

(आपराधिक अपील संख्या 923/2008)

16 मई 2008

(डॉ. अरिजीत पसायत और लोकेश्वर सिंह पंटा, जे.जे.)

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 313 - अभियुक्तों से पूछताछ करने की शक्ति - अभियुक्तों का बयान - अनुचित रिकॉर्डिंग - प्रभाव - आयोजित: तथ्य, धारा 313 के तहत अभियुक्तों से पूछताछ ठीक से नहीं की गई - आरोपी धारा 313 के तहत अपना बयान दर्ज करते समय आरोपों की व्याख्या नहीं की गई - साथ ही, आरोपी की उपस्थिति/भागीदारी स्थापित नहीं हुई - इस प्रकार, नीचे की अदालतों द्वारा दोषसिद्धि कायम नहीं की जा सकती - दंड कोड, 1860 - धारा 302, 149 धारा 34 के साथ पढ़ें

अभ्यास और प्रक्रिया - निर्णय/आदेश - कारणों की पुनरावृत्ति की आवश्यकता - माना गया: एक तर्कसंगत आदेश देना आवश्यक है - कारण व्यक्तिपरकता को वस्तुनिष्ठता से प्रतिस्थापित करते हैं।

अभियोजन पक्ष के अनुसार, बीएन ने हथियारों से लैस अन्य 10 आरोपियों के साथ मिलकर एक गैरकानूनी सभा बनाई और सामान्य उद्देश्य के लिए बीएम की हत्या कर दी और बीएल, एसडी और मुखबिर को घायल कर दिया। ट्रायल कोर्ट ने उन्हें आईपीसी की धारा 302/34 के तहत दोषी ठहराया और सजा सुनाई। बीएन और केएम को आईपीसी की धारा 302/34 के तहत दोषी ठहराया गया। अपीलकर्ताओं ने इस आधार पर अपील दायर की कि सीआरपीसी की धारा 313 के तहत परीक्षा ठीक से नहीं किया गया, आरोपों का विवरण उनके संज्ञान में नहीं लाया गया और यहां तक कि आरोप भी ठीक से तय नहीं किए गए। उच्च न्यायालय ने अपीलें खारिज कर दीं। इसलिए वर्तमान अपील।

अपीलकर्ताओं ने तर्क दिया कि उन्हें आईपीसी की धारा 149 के आवेदन द्वारा दोषी ठहराया गया था; यह कि उनकी उपस्थिति और/या भागीदारी स्थापित नहीं की गई है; और

यह कि जांच सीआरपीसी की धारा 313 के तहत ठीक से नहीं किया गया था, और किसी भी स्थिति में लगाए गए आरोप पूरी तरह से दोषपूर्ण थे।

कोर्ट ने अपील स्वीकार करते हुए

माना: 1.1 तर्क हर निष्कर्ष की धड़कन है, और इसके बिना यह निर्जीव हो जाता है। कारण व्यक्तिपरकता को वस्तुनिष्ठता से प्रतिस्थापित करते हैं। कारणों को दर्ज करने पर जोर यह है कि यदि निर्णय "स्फिंक्स के गूढ़ चेहरे" को उजागर करता है, तो यह अपनी चुप्पी से, न्यायालयों के लिए अपने अपीलीय कार्य करना या वैधता का निर्णय करने में न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करना लगभग असंभव बना सकता है। तर्क का अधिकार एक सुदृढ़ न्यायिक प्रणाली का एक अनिवार्य हिस्सा है; कारण कम से कम न्यायालय के समक्ष मामले पर दिमाग लगाने का संकेत देने के लिए पर्याप्त हैं। दूसरा तर्क यह है कि प्रभावित पक्ष यह जान सकता है कि निर्णय उसके विरुद्ध क्यों गया है। प्राकृतिक न्याय की हितकारी आवश्यकताओं में से एक दिए गए आदेश के कारणों को स्पष्ट करना है, दूसरे शब्दों में, खुलकर बोलना। "स्फिंक्स का गूढ़ चेहरा" आमतौर पर न्यायिक या अर्ध-न्यायिक प्रदर्शन के साथ असंगत है। [पैरा 6 और 7]

1.2. वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय का निर्णय व्यावहारिक रूप से अनुचित है। [पैरा 9]

राज किशोर झा बनाम बिहार राज्य एवं अन्य। 2003 (7) एससीसी 152; पंजाब राज्य बनाम भाग सिंह **2004 (1) एससीसी 547 - पर निर्भर।**

ब्रीन बनाम अमलगमेटेड इंजीनियरिंग यूनियन **1971 (1) सभी ई.आर. 1148**; *अलेक्जेंडर मशीनरी (डुडले) लिमिटेड बनाम क्रैबट्री* **1974 आईसीआर 120) (एनआईआरसी) - संदर्भित।**

2.1. धारा 313 सीआर.पी.सी., स्वयं, स्पष्ट भाषा में वस्तु की घोषणा करता है कि यह "अभियुक्त को व्यक्तिगत रूप से उसके खिलाफ साक्ष्य में दिखाई देने वाली किसी भी परिस्थिति को समझाने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से है"। इस प्रकार प्रावधान का उद्देश्य मुख्य रूप से अभियुक्त को लाभ पहुंचाना है और इसके परिणामस्वरूप अंतिम निष्कर्ष तक पहुंचने में अदालत को लाभ होगा। (पैरा 18 और 19)

2.2 धारा 313 सी.आर.पी.सी. इसका उद्देश्य उसे किसी पद पर स्थापित करना नहीं है, बल्कि ऑडी अल्टरम पार्टम (प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत) की कहावत में निहित प्राकृतिक न्याय के सबसे हितकारी सिद्धांत का अनुपालन करना है। संहिता की धारा 313 में उपधारा (1) के खंड (ए) में शब्द "हो सकता है", बिना किसी संदेह के, इंगित करती है कि भले ही अदालत उस खंड के तहत कोई प्रश्न नहीं उठाती है, फिर भी अभियुक्त इसके लिए कोई

शिकायत नहीं उठा सकता है। लेकिन यदि अदालत उपधारा के खंड (बी) के तहत आवश्यक प्रश्न रखने में विफल रहती है तो इसके परिणामस्वरूप बाधा अभियुक्त के लिए उत्पन्न होगी और वह वैध रूप से दावा कर सकता है कि कोई भी सबूत, उसे समझाने का अवसर दिए बिना, उसके खिलाफ इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि जिस परिस्थिति के बारे में आरोपी से स्पष्टीकरण नहीं मांगा गया था, उसका इस्तेमाल उसके खिलाफ नहीं किया जा सकता है। (पैरा 20)

विभूति भूषण दास गुप्ता एवं अन्य। बनाम पश्चिम बंगाल राज्य **एआईआर 1969 एससी 381**; *हेट सिंह भगत सिंह बनाम मध्य भारत राज्य एआईआर* **1953 एससी 468**; *शिवाजी साहबराव बोबडे बनाम महाराष्ट्र राज्य* **1973 (2) एससीसी 793** और *जय देव बनाम पंजाब राज्य एआईआर* **1963 एससी 612 - संदर्भित**

3.1. पीडब्लू.4, 5 और 6 के साक्ष्य के संबंध में, यह स्पष्ट है कि पीडब्लू5 ने अपीलकर्ता नंबर 1 को हमलावर होने का नाम नहीं दिया, जबकि पीडब्लू3 का कहना है कि उसने पीडब्लू 5 पर हमला किया था। तय किए गए आरोप सभी आरोपी व्यक्तियों के लिए सामान्य थे। [पैरा 10]

3.2 अपीलकर्ता का यह कथन कि सी.आर.पी.सी. धारा 313 के तहत परीक्षा के दौरान कोई उचित प्रश्न नहीं पूछा गया था और उचित आरोप भी तय नहीं किये गये, यह स्वीकार किया गया है। अभियोजन पक्ष का यह मामला नहीं है कि अपीलकर्ताओं ने बीएम की हत्या की थी। इसके अतिरिक्त, जहां तक आईपीसी की धारा 326 के तहत आरोप है, अपने साक्ष्य में पीडब्लू 4, 5 और 6 ने अपीलकर्ताओं द्वारा उनमें से किसी पर हमला करने के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा है। [पैरा 12]

3.3. उच्च न्यायालय का यह मानना स्पष्ट रूप से गलत था कि सीआरपीसी की धारा 313 के तहत बयान दर्ज करते समय आरोपी व्यक्तियों को आरोपों के बारे में ठीक से समझाया गया था। इसलिए, ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज की गई और उच्च न्यायालय द्वारा बरकरार रखी गई उनकी सजा को बरकरार नहीं रखा जा सकता है। अपीलकर्ताओं को आरोपों से बरी किया जाता है। [पैरा 21 और 22]

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: 2008 की आपराधिक अपील संख्या 923

सीआरएल अपील संख्या 384/ सी 2000 (आर) पर रांची स्थित झारखंड उच्च न्यायालय के दिनांक 13.11.2006 के अंतिम निर्णय और आदेश से।

अपीलकर्ताओं के लिए एस. चंद्र शेखर और मधु शरण।

प्रतिवादी की ओर से रतन कुमार चौधरी।

न्यायालय का निर्णय सुनाया गया

डॉ. अरिजीत पसायत, जे. 1. अनुमति स्वीकृत।

2. इस अपील में अपीलकर्ता द्वारा दायर अपील को खारिज करने वाले झारखंड उच्च न्यायालय की खंडपीठ के फैसले को चुनौती दी गई है। दस अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा तीन अपीलें दायर की गईं। कुल मिलाकर 11 आरोपी व्यक्ति थे जिन्हें दोषी ठहराया गया था। अपीलकर्ता लाटू महतो और नानू चंद महतो ने खीरू महतो के साथ आपराधिक अपील संख्या 384 ऑफ 2000 (आर) दायर की थी। पांच अन्य ने 2000 (आर) की आपराधिक अपील संख्या 362 दायर की थी। उन्हें भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में 'आईपीसी') की धारा 149 के साथ पढ़ी जाने वाली धारा 302 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए दोषी ठहराया गया था। दो अन्य ने 2000 (आर) की आपराधिक अपील संख्या 411 दायर की थी और उन्हें आईपीसी की धारा 302/34 और 302/149 के तहत दंडनीय अपराध का दोषी पाया गया था।

3. मुकदमे के दौरान चर्चा के अनुसार अभियोजन पक्ष का संस्करण इस प्रकार है:

17. 7.1987 की सुबह सूचक फूलचंद महतो बुद्धू महतो (बाद में 'मृतक' के रूप में संदर्भित) के साथ ग्राम तारानारी, टोला-बेहराटांड़ में अपने घर के पास स्थित खेत में शकरकंद की रोपाई कर रहे थे, तभी अपीलार्थी कार्तिक महतो, सुकर महतो और भीम महतो वहां हल जोतने के लिए बैल लेकर आया और उनके हिस्से का खेत जोतने का प्रयास किया. इसका विरोध किया गया और मुखबिर पक्ष द्वारा उन्हें पीछे हटने के लिए मजबूर किया गया। हालांकि, कुछ ही देर में अपीलार्थी बेनी महतो, मांझी महतो, नुनूचंद्र महतो, लाटू महतो, कोयला महतो, खीरू महतो, महरू ठाकुर सहित उपरोक्त सभी आरोपित भकुवा, फरसा, तलवार, लाठी, धनुष, तीर आदि से लैस होकर वापस लौट आये. मुखबिर के अनुसार, अपीलार्थी बेनी महतो भकुवा ले जा रहा था, अपीलार्थी कार्तिक तलवार लेकर जा रहा था, अपीलार्थी कोयल महतो फरसा ले जा रहा था, अपीलार्थी खीरू महतो बल्लन ले जा रहा था", अपीलार्थी सुकर महतो धनुष और तीर ले जा रहा था, अपीलार्थी नुनुचंद टांगरी ले जा रहा था, और अपीलकर्ता शिम महतो भकुवा और अन्य लोग लाठी लेकर चल रहे थे।

(i) सूचक फूलचंद महतो (पीडब्ल्यू 4) के अनुसार, मृतक को अपीलकर्ता बेनी महतो ने उसकी गर्दन पर भकुवा से वार किया था जिसके बाद वह गिर गया।

(ii) इसके बाद कार्तिक महतो ने उसके पिता पर तलवार से वार करना शुरू कर दिया, जिससे उनके शरीर पर कई चोटें आईं।

(iii) आगे कहा गया है कि जब सूचक और उसके चाचा भोला महतो ने हस्तक्षेप करने की कोशिश की, तो उनके साथ भी मारपीट की गई।

अपीलकर्ताओं ने संझवा देवी और एक लाखन महतो पर भी हमला किया, जो पास में खेत की जुताई कर रहे थे।

इस घटना के दौरान अपीलार्थी सुकर महतो तीर चला रहा था. मुखबिर और अन्य घायल गवाहों ने शोर मचाया जिस पर ग्रामीण वहां पहुंचे और घटना देखी। इसके बाद अपीलकर्ता भाग गए। घटना के पीछे का कारण गैरमजरूआ जमीन को लेकर विवाद बताया जा रहा है, जिस पर लंबे समय से सूचक का कब्जा था. सूचक के पिता बुधु महतो की मौके पर ही मौत हो गयी.

मामले की सूचना नावाडीह पुलिस को दी गई, पुलिस गवाहों की मौजूदगी में मौके पर पहुंची और जांच शुरू की। पुलिस ने बुधु महतो के शव की जांच रिपोर्ट तैयार की और गवाहों की मौजूदगी में घटनास्थल से खून से सना भकुवा, मिट्टी और सात तीर जब्त कर लिया. फर्दबयान के आधार पर नावाडीह पी.एस. 1987 का केस नंबर 38 धारा 147,148,149,323,324,307,302 और 447 आईपीसी के तहत दर्ज किया गया था। पुलिस ने जांच पूरी की और अंततः ग्यारह आरोपियों के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया, जिन पर आईपीसी की धारा 326,147,148,447 और 302/149 के तहत आरोप लगाए गए थे, जिसमें उन्होंने खुद को निर्दोष बताया। उन पर आईपीसी की धारा 302/34 के तहत अतिरिक्त आरोप लगाए गए।

अपीलकर्ताओं द्वारा लिया गया मुख्य बचाव निहितार्थ की मिथ्या थी। उन्होंने यह भी दावा किया कि वे लंबे समय से संबंधित भूमि की जुताई कर रहे थे। हालाँकि, गवाहों की जांच के बाद विद्वान ट्रायल कोर्ट ने सभी को आईपीसी की धारा 302/149 के तहत दंडनीय अपराध का दोषी पाया। विद्वान निचली अदालत ने अपीलकर्ताओं बेनी महतो और कार्तिक महतो को आईपीसी की धारा 302/34 के तहत 2000 (आर) की आपराधिक अपील संख्या 411 में दोषी पाया और दोषी ठहराया। सभी अपीलकर्ताओं को उनके खिलाफ साबित हुए अपराधों के लिए आजीवन कठोर कारावास की सजा सुनाई गई। हालाँकि, उन्हें किसी भी छोटे अपराध के लिए सज़ा नहीं दी गई, हालांकि उनके खिलाफ मामला साबित हो गया। अपीलकर्ताओं कोयला महतो, महरू महतो और खीरू महतो की अपील के लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई।

यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि जिन आरोपियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील दायर की थी, उनमें से अपीलकर्ता कोयला महतो, मांझी महतो और भीम महतो की अपील की लंबित अवधि के दौरान मृत्यु हो गई। अन्य तथ्यात्मक पहलुओं के अलावा, उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में अपीलकर्ताओं ने प्रस्तुत किया था कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973

की धारा 313 (संक्षेप में 'सी.आर.पी.सी.') के तहत परीक्षा ठीक से नहीं की गई थी। आरोपों का विवरण उनके संज्ञान में नहीं लाया गया, यहाँ तक कि जो आरोप तय किये गये थे वे भी उचित नहीं थे। उच्च न्यायालय ने कहा कि आरोप तय करते समय अपीलकर्ता के खिलाफ ट्रायल कोर्ट द्वारा अलग से आरोप पत्र तैयार नहीं किया गया था। यह माना गया कि अपीलकर्ताओं को उनके बयानों के दौरान आरोपों के बारे में समझाया गया था जबकि उनके बयान सीआरपीसी की धारा 313 के तहत दर्ज किए जा रहे थे।

4. अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ताओं को आईपीसी की धारा 149 के तहत दोषी ठहराया गया है। उनकी उपस्थिति और/या भागीदारी स्थापित नहीं की गई है। धारा 313 जी.आर.पी.सी. के तहत परीक्षा ठीक से नहीं किया गया था और किसी भी स्थिति में लगाए गए आरोप पूरी तरह से दोषपूर्ण थे।

5. दूसरी ओर, प्रतिवादी-राज्य के विद्वान वकील ने ट्रायल कोर्ट और उच्च न्यायालय के फैसले का समर्थन किया।

6. तर्क हर निष्कर्ष की धड़कन है और इसके बिना वह बेजान हो जाता है। (देखें *राज किशोर झा बनाम बिहार राज्य और अन्य* (2003 (7) एससीसी 152)।

7. प्रशासनिक आदेशों के संबंध में भी *ब्रीन बनाम अमलगमेटेड इंजीनियरिंग यूनियन* (1971 (1) ऑल ई.आर. 1148) में लॉर्ड डेनिंग एम.आर. ने कहा, "कारण बताना अच्छे प्रशासन के बुनियादी सिद्धांतों में से एक है"। *अलेक्जेंडर मशीनरी (डुडले) लिमिटेड बनाम क्रैबट्री* (1974 आईसीआर 120) (एनआईआरसी) में यह देखा गया: "कारण बताने में विफलता न्याय से इनकार करने के बराबर है"। कारण निर्णय लेने वाले के दिमाग से संबंधित विवाद और उस पर आए निर्णय या निष्कर्ष के बीच जीवंत संबंध हैं।", यह अपनी चुप्पी से, न्यायालयों के लिए अपना अपीलीय कार्य करना या निर्णय की वैधता तय करने में न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करना लगभग असंभव बना सकता है। तर्क का अधिकार एक मजबूत न्यायिक प्रणाली का एक अनिवार्य हिस्सा है; कारण कम से कम न्यायालय के समक्ष मामले में दिमाग लगाने का संकेत देने के लिए पर्याप्त है। एक अन्य तर्क यह है कि प्रभावित पक्ष यह जान सकता है कि निर्णय उसके खिलाफ क्यों गया है। प्राकृतिक न्याय की हितकारी आवश्यकताओं में से एक आदेश के कारणों को स्पष्ट करना है; दूसरे शब्दों में, बोलना। "स्फिंक्स का गूढ़ चेहरा" आमतौर पर न्यायिक या अर्ध-न्यायिक प्रदर्शन के साथ असंगत है।

8. उपरोक्त स्थिति को *पंजाब राज्य बनाम भाग सिंह* (2004 (1) एससीसी 547) में उजागर किया गया था।

9. वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय का निर्णय व्यावहारिक रूप से अनुचित है।

10. पीडब्लू 4, 5 और 6 के साक्ष्य के अनुसार, यह स्पष्ट है कि पीडब्लू5 भोला ने अपीलकर्ता नंबर 1 को हमलावर नहीं बताया है, जबकि पीडब्लू3 में कहा गया है कि उसने भोला-पीडब्लू 5 पर हमला किया था। लगाए गए आरोप सभी के लिए सामान्य थे। आरोपी व्यक्तियों और जहां तक धारा 149 और 302/34 का संबंध है, यह इस प्रकार है:

> "कि आप उसी दिन या लगभग उसी स्थान पर एक गैरकानूनी सभा के सदस्य थे, और जिसके सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में, बुधु महतो की हत्या की और भोला महतो, संझवा देवी और फूलचंद महतो पर हमला और इस तरह आप धारा 149 आईपीसी के तहत उक्त हत्या और हमले के दोषी हैं। और इस तरह धारा 149 आईपीसी के तहत दंडनीय अपराध किया है और इसके तहत आप, उसी दिन या उसके आसपास उसी स्थान पर आम हस्तक्षेप से बुधु महतो की हत्या का अपराध किया।

11. जहां तक धारा 313 के बयान का सवाल है, एकमात्र प्रासंगिक प्रश्न इस प्रकार था:

> 'यह अभियोजन पक्ष के गवाहों का मामला है कि 17.7.1987 को ग्राम तारानारी, टोला बेहराटांड, पी.एस. नवादाही, जिला बोकारो, आपने अन्य अभियुक्तों के साथ मिलकर हथियारों से लैस होकर एक गैरकानूनी सभा का गठन किया और गैरकानूनी सभा के सामान्य उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए, आपने और अन्य अभियुक्तों ने बुधु महतो की हत्या कर दी और इस दौरान भोला महतो, संझवा देवी को घायल कर दिया और फूलचंद महतो। आप को क्या कहना है?"

12. अपीलकर्ता के विद्वान वकील का यह उचित तर्क है कि धारा 313 सीआरपीसी के तहत परीक्षा के दौरान कोई उचित प्रश्न नहीं उठाया गया था। और उचित आरोप भी तय नहीं किये गये। अभियोजन पक्ष का यह मामला नहीं है कि अपीलकर्ताओं ने बुधु महतो की हत्या की थी। इसके अतिरिक्त, जहां तक आईपीसी की धारा 326 के तहत आरोप का सवाल है, पीडब्लू 4, 5 और 6 ने अपने साक्ष्य में अपीलकर्ताओं में से किसी पर भी हमला करने के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा है।

13. *विभूति भूषण ओस गुप्ता एवं अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य* (एआईआर 1969 एससी 381) में, इस न्यायालय ने माना कि वकील, आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1898 (इसके

बाद 'पुरानी संहिता' के रूप में संदर्भित) की धारा 342 के प्रयोजन के लिए, अभियुक्त का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता है, जो वर्तमान में धारा है 313 सी.आर.पी.सी.।

14. धारा 313 सी.आर.पी.सी. इस प्रकार पढ़ता है:

"313. *अभियुक्त की जांच करने की शक्ति.*-(1) प्रत्येक पूछताछ या परीक्षण में, अभियुक्त को व्यक्तिगत रूप से उसके खिलाफ साक्ष्य में दिखाई देने वाली किसी भी परिस्थिति को समझाने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से, अदालत-

(ए) किसी भी स्तर पर, आरोपी को पहले से चेतावनी दिए बिना, उससे ऐसे प्रश्न पूछ सकता है जो अदालत आवश्यक समझे;

(बी) अभियोजन पक्ष के गवाहों की जांच हो जाने के बाद और अपने बचाव के लिए बुलाए जाने से पहले, आम तौर पर मामले पर उससे पूछताछ करेगा:

बशर्ते कि समन मामले में, जहां अदालत ने अभियुक्त की व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट दे दी है, वह खंड (बी) के तहत उसकी परीक्षा से भी छूट दे सकती है।

(2) जब उप-धारा (1) के तहत आरोपी की जांच की जाती है तो उसे कोई शपथ नहीं दिलाई जाएगी।

(3) अभियुक्त ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने से इनकार करके, या उनके गलत उत्तर देकर स्वयं को दंड का भागी नहीं बनाएगा।

(4) अभियुक्त द्वारा दिए गए उत्तरों को ऐसी जांच या परीक्षण में ध्यान में रखा जा सकता है, और किसी अन्य अपराध की किसी अन्य जांच, या परीक्षण में उसके लिए या उसके खिलाफ साक्ष्य में रखा जा सकता है, जो ऐसे उत्तरों से पता चलता है कि उसने किया है।"

15. पुरानी संहिता में उक्त प्रावधान की अग्रदूत धारा 342 थी। इसे इस प्रकार कहा गया था:

"342. (1) अभियुक्त को उसके खिलाफ साक्ष्य में दिखाई देने वाली किसी भी परिस्थिति को समझाने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से, अदालत, किसी भी जांच या परीक्षण के किसी भी चरण में, अभियुक्त को पहले से चेतावनी दिए बिना, उससे ऐसे प्रश्न पूछ सकती है जैसे अदालत आवश्यक समझती है, और, पूर्वोक्त उद्देश्य के लिए, अभियोजन पक्ष के गवाहों की जांच के बाद और अपने बचाव के लिए बुलाए जाने से पहले आम तौर पर मामले पर उससे पूछताछ करेगी।

(2) अभियुक्त ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने से इनकार करके, या उनके गलत उत्तर देकर स्वयं को दंड का भागी नहीं बनाएगा; लेकिन अदालत और जूरी (यदि कोई हो) ऐसे इनकार या जवाब से ऐसा निष्कर्ष निकाल सकते हैं जैसा वह उचित समझते हैं।

(3) आरोपी द्वारा दिए गए उत्तरों को ऐसी जांच या परीक्षण में ध्यान में रखा जा सकता है, और किसी अन्य जांच में या किसी अन्य अपराध के लिए परीक्षण में उसके पक्ष में या उसके खिलाफ साक्ष्य में रखा जा सकता है, जो ऐसे उत्तर दिखाने के लिए हो सकते हैं। उसने प्रतिबद्ध किया है.

(4) जब उप-धारा (1) के तहत आरोपी की जांच की जाती है तो उसे कोई शपथ नहीं दिलाई जाएगी।

16. पुराने कोड के तहत अनुभाग मूल रूप में बने रहने की स्थिति से निपटते हुए, *हेट सिंह भगत सिंह बनाम मध्य भारत राज्य* (एआईआर 1953 एससी 468) में इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीश पीठ ने कहा कि:

"कमिटिंग मजिस्ट्रेट और सेशन जज द्वारा दर्ज किए गए अभियुक्त के बयानों का उद्देश्य भारत में इंग्लैंड और अमेरिका में गवाह-बॉक्स में अपने तरीके से बयान देने के लिए स्वतंत्र होगा। उन्हें साक्ष्य के रूप में प्राप्त किया जाना चाहिए और साक्ष्य के रूप में माना जाना चाहिए और मुकदमे में उन पर विधिवत विचार किया जाना चाहिए।"

17. प्रासंगिक रूप से हम *शिवाजी साहबराव बोबडे बनाम महाराष्ट्र राज्य* (1973 (2) एससीसी 793) में इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ के फैसले को नजरअंदाज नहीं कर सकते क्योंकि पीठ ने अभियुक्तों से पूछताछ के संबंध में प्रावधान का दायरा बढ़ा दिया है। अभियोजन साक्ष्य समापन. उस मामले में विद्वान न्यायाधीश अभियोजन साक्ष्य में उसके खिलाफ पेश होने वाली एक महत्वपूर्ण परिस्थिति पर अभियुक्त से सवाल पूछने की चूक के परिणामों पर विचार कर रहे थे। तीन-न्यायाधीशों की खंडपीठ ने उसमें निम्नलिखित टिप्पणियाँ कीं: (एससीसी पृष्ठ 806, पैरा 16)

> "यह घिसा-पिटा कानून है, फिर भी मौलिक है, कि कैदी का ध्यान प्रत्येक प्रेरक सामग्री पर आकर्षित किया जाना चाहिए ताकि वह उसे समझाने में सक्षम हो सके। यह एक आपराधिक मुकदमे की बुनियादी निष्पक्षता है और इस क्षेत्र में विफलताएं, यदि परिणामी न्याय की विफलता हुई है, मुकदमे की वैधता को गंभीर रूप से खतरे में डाल सकती हैं, । हालाँकि, जहां ऐसी चूक हुई है, यह वास्तव में कार्यवाही को ख़राब नहीं करती है और इस तरह के दोष से उत्पन्न

पूर्वाग्रह को अभियुक्त द्वारा स्थापित किया जाना चाहिए। अभियुक्त के सामने साक्ष्य सामग्री नहीं रखे जाने की स्थिति में, न्यायालय को आमतौर पर ऐसी सामग्री पर विचार करने से बचना चाहिए। अपीलीय अदालत भी इसके लिए वकील को बुलाने के लिए स्वतंत्र है। अभियुक्त को यह दिखाना होगा कि उसके विरुद्ध स्थापित परिस्थितियों के संबंध में अभियुक्त के पास क्या स्पष्टीकरण है, लेकिन उसे नहीं बताया गया है और यदि अभियुक्त अपीलीय अदालत को ऐसी परिस्थितियों के बारे में कोई प्रशंसनीय या उचित स्पष्टीकरण देने में असमर्थ है, तो अदालत यह मान सकती है कि कोई स्वीकार्य उत्तर नहीं है। मौजूद है और अगर अभियुक्त से ट्रायल कोर्ट में उचित समय पर पूछताछ की गई होती तो भी वह उन परिस्थितियों से बाहर निकलने के लिए कोई अच्छा आधार नहीं दे पाता, जिन पर ट्रायल कोर्ट ने अपनी सजा के लिए भरोसा किया था।"

18. संहिता की धारा 313 के तहत किसी अभियुक्त से पूछताछ का उद्देश्य क्या है? धारा स्वयं स्पष्ट भाषा में उद्देश्य की घोषणा करती है कि यह "अभियुक्त को व्यक्तिगत रूप से उसके खिलाफ साक्ष्य में दिखाई देने वाली किसी भी परिस्थिति को समझाने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से है"। *जय देव बनाम पंजाब राज्य* (AIR1963 SC 612) में गजेंद्रगडकर, जे. (जैसा कि वह तब थे) ने तीन-न्यायाधीशों की बेंच के लिए बोलते हुए यह निर्धारित करने में अंतिम परीक्षण पर ध्यान केंद्रित किया है कि प्रावधान का उचित रूप से अनुपालन किया गया है या नहीं। उन्होंने इस प्रकार देखा:

"यह निर्धारित करने में अंतिम परीक्षण कि धारा 342 के तहत आरोपी से निष्पक्ष रूप से पूछताछ की गई है या नहीं, यह पूछताछ करना होगा कि क्या, उससे पूछे गए सभी सवालों को ध्यान में रखते हुए, उसे अभियोजन के संबंध में वह कहने का अवसर मिला जो वह कहना चाहता था। यदि ऐसा प्रतीत होता है कि आरोपी व्यक्ति की जांच दोषपूर्ण थी और इस प्रकार उसके प्रति पूर्वाग्रह पैदा हुआ है, तो यह निस्संदेह एक गंभीर कमजोरी होगी।"

19. इस प्रकार यह अच्छी तरह से स्थापित है कि प्रावधान का उद्देश्य मुख्य रूप से अभियुक्त को लाभ पहुंचाना है और इसके परिणामस्वरूप अंतिम निष्कर्ष तक पहुंचने में अदालत को लाभ होगा।

20. साथ ही यह ध्यान में रखना चाहिए कि प्रावधान का उद्देश्य उसे किसी पद पर स्थापित करना नहीं है, बल्कि मैक्सिम ऑडी अल्टरम पार्टम में निहित प्राकृतिक न्याय के

सबसे हितकारी सिद्धांत का अनुपालन करना है। संहिता की धारा 313 में उप-धारा (1) के खंड (ए) में "हो सकता है" शब्द बिना किसी संदेह के इंगित करता है कि भले ही अदालत उस खंड के तहत कोई प्रश्न नहीं उठाती है, फिर भी आरोपी इसके लिए कोई शिकायत नहीं उठा सकता है। लेकिन अगर अदालत उप-धारा के खंड (बी) के तहत आवश्यक प्रश्न पूछने में विफल रहती है तो इसके परिणामस्वरूप आरोपी के लिए बाधा उत्पन्न होगी और वह वैध रूप से दावा कर सकता है कि कोई भी सबूत, उसे समझाने का अवसर दिए बिना, उसके खिलाफ इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। उसे। अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि जिस परिस्थिति के बारे में अभियुक्त को स्पष्टीकरण देने के लिए नहीं कहा गया था, उसका उपयोग उसके खिलाफ नहीं किया जा सकता है।

21. उच्च न्यायालय यह मानने में स्पष्ट रूप से गलत था कि धारा 313 सीआरपीसी के तहत अपने बयान दर्ज करते समय आरोपी व्यक्तियों को आरोपों को ठीक से समझाया गया था, इसलिए, ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज की गई और उच्च न्यायालय द्वारा बरकरार रखी गई उनकी सजा को बरकरार नहीं रखा जा सकता है।

22. अपीलकर्ताओं को आरोपों से बरी किया जाता है। जब तक किसी अन्य मामले के संबंध में हिरासत में रखने की आवश्यकता न हो, उन्हें तुरंत रिहा कर दिया जाए।

23. अपील स्वीकार की जाती है।

एन.जे. अपील की अनुमति.

आशीष तिवारी की देखरेख में आशा शुक्ला द्वारा अनुवादित।